Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities, Vol 1 pp. 63-77, 2006 DOI: 10.51220/hjssh.v1i1.11

भारत में पंचायती राज व्यवस्थाः उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ

(७३ वें संविधान संशोधन के विशेष सन्दर्भ)

राकेश काला

राजनीति शास्त्र-विभाग, हे०न०ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय, परिसर पौड़ी (गढ़वाल)

पंचायत राज प्रत्यक्ष प्रजातंत्र को जनता तक पहुंचाने का एक उपकरण हैं यह ही वह उपयुक्त माध्यम है जो शासन को सामान्य जनता के दरवाजे तक लाता है, लोकतंत्र की संकल्पना को अधिक यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायत राज व्यवस्था एक ठोस कदम है। इस व्यवस्था में सत्ता सीधे जनता को सौंप दी जाती है। पंचायती राज ग्रामीण जनता को अपनी समस्याओं को समझने, उनका समाधान निकालने तथा अपने सीमित संशाधनों को अपनी समझ-बूझ से इस्तेमाल करने की क्षमता प्रादन करता है। इस तरह से पंचायत राज सच्चे अर्थों में जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन स्थापित करता है। इस व्यवस्था में स्थानीय विषयों पर निर्णय लेने और उसे कार्यान्वित करने का अधिकार व शक्ति पंचायत के माध्यम से सीधे जनता को प्राप्त होता है। इस प्रकार पंचायतराज जन-सशक्तिकरण की कुंजी है। पंचायती राज सामान्य जनता को न केवल विकास एवं निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में भागेदारी का ही समुचित अवसर प्रदान करता है; अपितु उनमें स्वयम-सहायता एवं आत्मनिर्भरता जैसी भावनाओं का भी संचार करता है तथा साथ ही उन्हें स्थानीय स्वशासन की शासन कला के अनुभव से परिचित करताा है[1]।

पंचायत राज व्यवस्था की खास विशेषता यह है कि इसमें स्थानीय लोगों की स्थानीय शासन कार्यों मे अनवरत रूचि बनी रहती है। क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अतः इस अर्थ में पंचायती राज संस्थायें स्थानीय जन सामान्य को शासन कार्य में भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से प्रत्यक्षतः एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वतः ही प्रदान करती रहती है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर यह स्थानीय जनप्रतिधि ही कालान्तर में विधान सभा एवं संसद का प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते है[2]।

भारत में पंचायत राज का उद्भव एवं विकास :-

पंचायतों का अस्तित्व अति प्राचीन है। इस व्यवस्था का उद्भव कब हुआ तथा इसका तात्कालिक स्वरुप क्या था, इस विषय में कहना कठिन है, परन्तु यह अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि जब मानव समुदायों का उदय हुआ होगा, लगभग उसी समय में पंचायत व्यवस्था का भी उद्भव हुआ होगा। पांच व्यक्तियों की सभा एक अति प्राचीन संस्था है जिसका अस्तित्व अनेक राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के पश्चात भी बना रहा है[3]।

©SHARAD

भारत में पंचायत राज व्यवस्था की अति प्राचीन पृष्ठभूमि रही है। वैदिक काल से पंचायतें भारतीय ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था की पहचान रही हैं। वैदिक साहित्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संगठित व्यवस्था के सन्दर्भ मिलते है। वैदिक युग में 'ग्राम' प्रशासन की सबसे छोटी ईकाई होती थी जिसका मुखिया 'ग्रामीणी' कहलाता था[4]। इसी प्रकार रामायण एवं महाभारत कालीन काव्य ग्रंथों में ग्रामीण प्रशासन का उल्लेख मिलता है। स्मृति ग्रन्थों में भी स्थानीय संस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। मनुस्मृति के अनुसार-'ग्रामिक' ग्रामीण शासन के लिए उत्तरदायी होता था। जिसका कार्य ग्राम में शांति-व्यवस्था बनाये रखना था तथा ग्रामवासियों से करों को एकत्रित करना था[5]। मौर्य एवं गुप्तकाल में भी अनेक गांवों में भी लोकसत्तात्मक व्यवस्था मौजूद थी। कौटिल्य का अर्थशास्त्र मौर्यकाल में प्रचलित ग्रामीण प्रशासन की व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। कौटिल्य के अनुसार-प्रत्येक ग्राम का शसक पृथक-पृथक होता था। ग्राम के शासन प्रमुख को ग्रामिक कहते थे। इस प्रकार भारत में वैदिक काल से ही ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था थी जो बाद के युगों में भी व्यवस्थित रूप से चलती रही।

मध्यकाल में भी गांवों में पंचायत व्यवस्था विद्यमान रही। इस युग में प्रत्येक ग्राम की एक सभा होती थी जो अपने क्षेत्र में शासन का सम्पूर्ण कार्य संभालती थी। ग्राम संस्थाओं का स्वरूप छोटे-छोटे राज्यों के समान था इसलिए वे प्राय: उन सभी कार्यों को करती थी, जो राज्य किया करते है[6]। गांव का संगठन मुस्लिम शासन (सन् 1556-1749) के दौरान भी यथावत रहा। मुगलकालीन शासन व्यवस्था में मौर्यकाल एवं गुप्तकाल की स्वशासी निकायें अभी भी स्वस्थ एवं क्रियाशील थीं। गांव प्रशासन की इकाई के रूप में अब भी विद्यमान थे किन्तु इनमें थोड़ा बहुत परिर्वतन कर दिया गया। प्रत्येक गांव परम्परागत स्थानीय अधिकारी होते थे। महत्त्वपूर्ण पद मुखिया का होता था जिसे प्राय: पटेल कहा जाता था जो राजस्व संग्रहण का कार्य करता था। लेखाकार गांव के लेखों का प्रभारी होता था। इसी प्रकार चौकीदार गांव के पुलिसमैन की भूमिका को निभाता था।[7] मुगलकाल में, विशेष रूप से शेरशाह के शासनकाल में, गांव का प्रशासन स्वयं ग्राम पंचायतों के द्वारा संचालित किया जाता था तथा पंचायत राज व्यवस्था को 'भूमि का कानून' समझा जाता था। सर्वप्रथम शेरशाह ने पंचायत व्यवस्था को कानूनी मानयता प्रदान की। शेरशाह के पंचायत व्यवस्था को सम्राट अकबर ने भी अपनाया तथा उसे कानूनी रूप प्रदान किया तथा उसे नागरिक प्रशासन का अनिवार्य अंग बनाया। शेरशाह के समान अकबर ने भी पंचायत व्यवस्था को कानूनी रूप प्रदान किया तथा पंचायतों को एक स्वायत्तथासी संस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया[8]। इस प्रकार प्राचीन भारत में विद्यमान पंचायत व्यवस्था मध्यकालीन युग में भी अनवरत रूप से कार्य करती रही। मुखिया, लेखाकार एवं चौकीदार जो पूर्व समय में पाये जाते थे, इस काल में भी ग्रामीण शासन के अंग बने रहे।

ब्रिटिश काल में ग्रामों की स्वायत्तता तथा स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं को आघात पहुंचा।

इसका प्रमुख कारण अंग्रेज शासकों के द्वारा पंचायतों को नकार देना था क्योंकि उनको इन संस्थाओं के महत्त्व का ज्ञान नहीं था। किन्तु कालान्तर में पंचायती राज संस्थाओं के महत्त्व की अनुभूति होने पर उन्होंने इन संस्थाओं को शक्तिशाली बनाने के प्रयास किये। प्रारम्भ में अंग्रेज शासकों ने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर अधिकारी तंत्र को प्रोत्साहित किया ताकि भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण किया जा सके। वस्तुत: ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत गांवों की आत्मनिर्भरता की व्यवस्था नष्ट हो गयी थी और पंचायत व्यवस्था पूर्णत: शिथिल हो गयी थी[9]। कालान्तर में अंग्रेज शासकों ने स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के प्रयास किये। इन प्रयासों में वायसराय लार्ड रिपन का सन् 1882 का प्रस्ताव उल्लेखनीय है। जिसके द्वारा ब्रिटिश शासन के अधीन समस्त गांवों तक कानूनी रूप से स्थानीय स्वशासन का विस्तार किया गया[10]। इसके पश्चात् सन 1907 में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग ने भी ग्रामीण प्रशासन एवं प्रबन्ध के लिए पंचायत संस्थाओं को आवश्यक बताया किन्तु आयोग के प्रस्ताव क्रियान्वित नहीं हो सके। इसके पश्चात् स्थानीय स्वशासन के सन्दर्भ में ब्रिटिश शासको के द्वारा और अधिनियम तथा आयोग निर्मित किये गये जिसमें 1909 का रौयल कमीशन, 1915 का भारत सरकार प्रस्ताव, 1918 की माण्टेग्यू चेल्मसफोर्ड रिपोर्ट, 1918 का भारत सरकार प्रताव प्रमुख है। इसके उपरान्त भारत सरकार अधिनियम, 1919 निर्मित हुआ किन्तु विभिन्न कारणों से स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के पश्चात् प्रान्तीय स्वायत्तता का शुभारम्भ हुआ। इसके फलस्वरूप देशमें स्वतंत्रता की दिशा में एक शक्तिशाली पहल हुई जिसका स्थानीय संस्थाओं पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ा। भारत शासन अधिनियत 1935 के अन्तर्गत 1937 में लोकप्रिय मंत्रिमण्डलों का निर्माण हुआ और उन्होंने स्थानीय संस्थाओं को जनता का वास्तविक प्रतिनिधि बनाने के लिए कानून निर्माण का कार्य हाथ में लिया। किन्तु दुर्भाग्यवश1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होने से स्थानीय संस्थाओं को लोकप्रिय बनाने का कार्य अवरुद्ध हो गया। स्थानीय शासन के इतिहास में सन् 1939 से 1946 तक की अवधि 'अन्धकार का युग' मानी जाती है। क्योंकि इस अवधि में ब्रिटिश भारत मे अंग्रेज अधिकारियों द्वारा ग्राम पंचायतें पूर्णत: उपेक्षित या तिरस्कृत कर दी गयी।[11]

स्वतंत्रता के पश्चात्-यद्यपि ब्रिटिश भारत के दौरान पंचायत व्यवस्था चरमरा गयी थी तथापि इसके बावजूद पंचायत राज का विचार ग्राम स्वराज्य केरूप में बना रहा और जब भारत स्वतंत्र हुआ तो इस विचार को भारतीय संविधान निर्माताओं के द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में स्थानीय स्वशासन की दिशा में जो नई पहल हुई वह मुख्यत: राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं पंडित नेहरू की सोच का नतीजा था। गांधीजी आधुनिक भारत में ग्राम स्वराज्य के लिए गांव पंचायत के सबसे बड़े पेरोकार थे। दिसम्बर 1946 में उन्होंने कहा था, "स्वतंत्रता की शुरूआत धरातल से होनी

चाहिए। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हर गांव एक पूर्ण सम्पन्न गणतंत्र हो, वह आत्मनिर्भर हो और स्वशासित हो। गांधीजी की इस विचारधारा को पं0 नेहरू ने गम्भीरता से समझा। वह मानते थे कि गॉवों के विकास और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किए बिना इस देश का सही अर्थो में विकास नहीं हो सकेगा। इस संकल्प को पूरा करने के लिए जो व्यवस्था वह अपनाना चाहते थे उसे उन्होंने पंचायती राज व्यवस्था का नाम दिया।[12] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्थानीय स्वायत्त शासन और विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया गया। पंचायतों को पुनर्जीवित किया गया। देश में पंचायती राज लाने के लिए संविधान के अनु 40 के अन्तर्गत पंचायतों की स्थापना की गयी, इस इनुच्छेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि–''राज्य का कर्तव्य होगा कि वह ग्राम पंचायतों का इस ढंग से संगठन करें कि वे स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सके।'' स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में पहला अभिनव प्रयास 2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ करके किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लोगों का अधिकमत कल्याण करना था। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इस कार्यक्रम में कई कार्य निर्धारित किये गये जैसे पड़त तथा बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, उन्नत कृर्षि उपकरणों की व्यवस्था, कृषकों तथा कर्मचारियों का प्रशिक्षण, कुटीर उद्योग धन्धों को बढ़ावा देना, शिक्षा प्रबन्ध, लोक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम इत्यादि। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रशासन का उत्तरदायित्व नियमित नौकरशाही को सौंपा गया परन्तु सामुदायिक विकास कार्यक्रम का यह प्रथम प्रयास अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सका। इसका प्रमुख कारण इस कार्यक्रम का नौकरशाही के द्वारा संचालित होना तथा इस कार्यक्रम में जनता की भागीदारी का न होना था। नौकरशाही के द्वारा संचालित होने के कारण इसमें सामुदायिक विकास की मशीनरी के विस्तार पर ही ज्यादा जोर दिया गया। सरकारी तन्त्र के जरिए गांव के लोगों की मनोवृत्ति बदलने की आशा की गयी, नजीता यह हुआ कि गॉवों की उन्नति के खुद प्रयत्न करने के बजाय ग्रामीण जनता सरकार का मुंह ताकती रही।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रभावशाली रूप में कार्य न कर पाने के कारण भारत सरकार द्वारा स्थानीय लोगों की विकास में सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए नवीन प्रयास किये। इन्हीं प्रयासों के तहत् सन् 1957 में बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक सतिति का गठन किया गया जिसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम की समीक्षा एवं ग्रामीण विकास ओर पंचायती राज की व्यवस्था करने से सम्बंधित रूपरेखा बनाने का दायित्व सौंपा गया। दिसम्बर 1957 में इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का मुख्य कारण स्थानीय लोगों की असहभागिता थी।[14] समिति ने महसूसू किया कि गॉवों में लोकतंत्र की स्थापना के लिए सच्चे अर्थो में सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। समिति ने इस बात पर भी बल दिया कि योजनाओं के निर्माण के समय स्थानीय ग्रामीण जनता का सहयोग भी लिया जाए। समिति ने स्पष्ट किया कि देश के विकास कार्यक्रम प्रशासन के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से ही सफल हो सकते

हैं। इस हेतु समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रकरण पर आधारित त्रि-स्तरीय पंचायत राज को स्थापित करने की अनुशंसा की। ये त्रि-स्तर हैं-ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्य स्तर पंचायत समिति तथा शीर्ष स्तर पर जिला परिषद। साथ ही इस त्रि-स्तरीय पंचायत राज की सफलता के लिए तीन बिन्दुओं को आवश्यक माना

1- सत्ता का विकेन्द्रीकरण ।

2- विकेन्द्रकरण इकाइयों को विकास के लिए पर्याप्त साधन प्रदान करना।

3- प्रशिक्षण की व्यवस्था।

मेहता समिति द्वारा की गयी सिफारिशों को 12 जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित कर दिया गया। मेहता समिति की सिफारिशों के अनुरूप पंचायत राज व्यवस्था का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1959 को किया गया। सर्वपव्रथम राजस्थान सरकार ने 2 अक्टूबर, 1959 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू से नागौर में पंचायती राज व्यवस्था का उद्घाटन कराकर त्रिस्तरीस ढॉचा प्रारम्भ किया। इसी दिन आन्ध्रप्रदेश में भी पंचायत राज व्यवस्था का शुभारम्भ कर दिया गया। इसके पश्चात 1960 में आसाम, मद्रास, मैसूर, 1961 में उड़ीसा, पंजाब और उत्तर प्रदेश, 1962 में महाराष्ट्र 1963 में गुजरात और 1964 में पं0 बंबाल और बिहार द्वारा यह प्रणाली शुरू की गयी।[15]

1959 के पश्चात लगभग एक दशक तक पंचायत राज की प्रगति की की दिशा में भारत सरकार तथा विभिन्न राज्यों द्वारा कदम उठाये जाते रहे। 1959 से 1964 के मध्य का समय इन संस्थाओं का सवर्णिम काल रहा। इन पॉच वर्षों में 2.25 लाख पंचायतों के गठन के माध्यम से देश की लगभग 44 करोड़ जनसंख्या को इनके प्रभाव क्षेत्र में लाया गया। 4974 ब्लाकों में से 4033 पंचायत समितियों की स्थापना की गयी और 399 जिलों में से 266 में जिला परिषदो का गठन किया गया।[16] किन्तु इसके पश्चात् पंचायत राज एवं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्रणाली के प्रति जो प्रारम्भिक उत्साह था वह ठंडा पड़ गया। प्रशासकीय एवं राजनीतिक स्तरों पर भी इन संस्थाओं के कार्यक्रम के प्रति उदासीनता दिखाई देने लग गयी। परिणामस्वरूप पंचायत राज संस्थाये मरणासन्न हो गयी। इस प्रकार 1969 से 1977 का समय पंचायत राज संस्थाओं के लिए पतन का काल साबित हुआ।

पुनः पंचायत राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने के लिए दिसम्बर 1977 में जनता सरकार द्वारा अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने अगस्त 1978 में 11 अध्यायों तथा 300 पृष्ठो की एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति की सबसे महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि पंचायत राज का ढॉचा त्रि-स्तरीय के स्थान पर द्वि-स्तरीय होना चाहिए पहला जिला स्तर पर जिलापरिषद् और दूसरा मण्डल सतर पर मण्डल पंचायत, जिला परिषद का गठन प्रत्यक्ष निर्वाचन के

आधार पर होना चाहिए, जिले की समस्त विकास गतिविधियां जिनका संचालन अब तक राज्य सरकार द्वारा किया जाता था परिषद् द्वारा स्वयम् किया जाना चाहिए। जिला परिषद का अध्यक्ष गैर सरकारी व्यक्ति होना चाहिए तथा, जिला अधिकारी को जिला परिषद के अधीन किया जाना चाहिए। पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिए। इस समिति की सिफारिशों की एक प्रमुख बात यह थी कि इसने पंचायत चुनावों में राजनीतिक भागीदारी का समर्थन किया। अशोक मेहमा समिति ने देश में पंचायत राज के आकार एवं स्थायित्व के निमित्त वित्तीय एवं प्रशासनिक प्रकृति की अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की, किन्तु रिपोर्ट के क्रियान्वयन के पूर्व ही जनता शासन का पतन हो गया। तत्पश्चात् 1980 में सत्तारुढ़ कांग्रेस सरकार ने इस समिति की रिपोर्ट राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार नहीं की परिणामतः इन संस्थाओं की पुनर्स्थापना की दिशा मे कुछ विशेष नहीं किया जा सका।

पुनः 1985 में तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने ग्रामीण स्थानीय सरकार के पुनर्गठन के तरीकों को सुझाने के लिए एक अन्य समिति जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में गठिन की। इसका उद्देश्य ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन की वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था का पुनरीक्षण करना था। इस समिति ने प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की एक साहसी योजना की सिफारिश की। समिति ने इस बात से सहमति व्यक्त की कि समस्त विकास कार्यक्रमों का केन्द्र जिला परिषदों का ही बनाया जाना चाहिए। समिति का यह स्पष्ट मत था कि आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की प्राप्ति की जिम्मेदारी केवल सरकारी मशीनरी पर नहीं थोपनी चाहिए। यह आवश्यक है कि स्थानीय लोगों व उनके प्रतिनिधियों को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने व उनके क्रियान्वयन में प्रभावी रूप से सहभागी बनाया जाय। समिति की यह भी सिफारिश थी कि पंचायत राज संस्थाओं को सक्रिय बनाया जाए तथा उन्हें पूरा आवश्यक सहयोग प्रदान किया जाय ताकि वे जन समस्याओं के निराकरण की प्रभावी संस्थाएं बन सकें। समिति का यह भी विचार था कि पंचायतों के नियमित चुनाव होने चाहिए और जिला परिषद का अध्यक्ष प्रत्यक्षतः निर्वाचित होना चाहिए। समिति के मत में जिला एवं नीचे के स्तर की पंचायत राज संस्थाओं को ग्रामीण विकास योजनाओं के नियोजन व मानीटरिंग में प्रभावी भूमिका प्रदान की जानी चाहिए। समिति की यह महत्त्पवूर्ण सिफारिश थी कि जिला बजट की आवधारणा शीघ्रातिशीघ्र प्रयुक्त की जाय[17]।

जी0बी0के0 राव समिति की संस्तुति पर किसी प्रकार की कार्यवाही करने से पूर्व सरकार ने सन् 1986 में लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया। समिति ने अन्य संस्तुतियों के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिये जाने की प्रबल संस्तुति की। इसने सुझाव दिया कि भारत के संविधान में एक पृथक अध्याय पंचायत राज संस्थाओं की पहचान एवं सम्पूर्णता को बनाने के लिए जोड़ा जाए ताकि इन संस्थाओं को तार्किक के आधारगत् रूप में अनतिक्रमणीय बनाया जा सके। समिति ने गावों के समूह के लिए न्याय पंचायत की स्थापना का भी

सुझाव दिया। जहाँ तक पंचायत राज संस्थाओं के चुनावों में राजनीतिक दलों की सहभागिता का प्रश्न है, समिति ने स्वयम कोई सुनिश्चित अनुशंसा नहीं की और ऐसे सरकारी निर्णय की अपेक्षा की जो व्यवहारिक हो तथा राष्ट्र के विभिन्न दलों की समहमति से लिया गया हो[18]।

राव समिति एवं सिंघवी समिति की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए इस इस दिशा में सकारात्मक प्रयास करने हेतु एवं पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा देने के उद्देश्य से 15 मई 1989 को तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी सरकार ने 64 वां संविधान संशोधन विधेयक संसद के सम्मुख प्रसतुत किया। इस विधेयक की मुख्य बातें इस प्रकार थी[19]।

1- पंचायती राज संस्थाओं का गठन त्रि-स्तरीय होगा-ग्राम, ब्लाक एवं जिला स्तर, छोटे राज्य जिनकर आबादी 20 लाख से कम है वे द्वि-स्तरीय ढांचा भी अपना सकते हैं।

2- पंचायत राज संस्थाओं के प्रति पांच वर्ष पर वयस्क मताधिकार के आधार पर नियमित निर्वाचन किये जायेगें।

3- राज्य सरकार पंचायतों में संसद और विधान सभा के सदस्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिए मानदण्ड निर्धारित कर सकती है। परन्तु इन सदस्यों को मत देने का अधिकार नहीं होगा।

4- पंचायत में महिलाओं को 30 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त होगा। यह आरक्षण अनुसूचित जातियों ओर जनजातियों को प्राप्त आरक्षण के अतिरिक्त होगा।

5- पंचायतों का निर्धारित अवधि से पूर्व विघटन होने पर अधिकमत 6 माह के भीतर नया निर्वाचन कराना अनिवार्य होगा।

6- पंचायतों को समुचित वित्तीय संसाधन राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराये जायेंगे।

7- प्रति पांच वर्ष पर राज्यपाल द्वारा एक राज्य वित्त आयोग का गठन किया जायेगा। इसका दायित्व पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनरीक्षण करना और वित्तीय मसलों पर राज्यपाल को परामर्श देना होगा।

इस प्रकार 64 वें संविधान विधेयक के माध्यम से पंचायत राज संस्थाओं को सशक्त बनाने हेतु महत्त्वपूर्ण प्रावधान किये गये परन्तु अनेक राजनीतिक कारणों से यह संशोधन विधेयक पारित नहीं हो पाया।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में ऐतिहासिक क्रांतिकारी कदमः ७३ वां संविधान संशोधन-

पंचायतो को संवैधानिक दर्जा दिये जाने का जो विचार 64 वें संविधान संशोधन के द्वार प्रस्तुत

किया गया था उसे 1992 में पी0वी0 नरसिम्हा राव सरकार के द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया गया। पी0वी0 नरसिम्हराव ने राजीव गांधी सरकार द्वारा तैयार पंचायत राज संस्थाओं से सम्बंधित विधेयक को संशोधित कर संसद में प्रस्तुत किया जिसे संसद ने 1992 में पारित कर दिया और इस प्रकार 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम बनकर सामने आया जिसने पंचायतों को एक संवैधानिक संस्था का दर्जा देकर उन्हें सभी वैधानिक उद्देश्यों के लिए एक नियमित निकाय बना दिया। यह 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम 24 अप्रैल 1993 से विधिवत् रूप से पूरे देश में लागू कर दिया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग- 'भाग 9' जोड दिया गया जिसका शीर्षक पंचायत रखा गया है। इसके द्वारा संविधान का अनु0 243 भी पुनर्निरूपित कर दिया गया जिसमें पंचायती राज से संबंधित प्रावधान बनाये गये जिन्हें 15 उप-अनुच्छेदों में बांटा गया है। नवीन पंचायती राज से सम्बन्धित जो प्रमुख संवैधानिक व्यवस्थायें 73 वें संविधान संशोधन द्वारा की गयी है वह इस प्रकार से है[20]।

1- सभी राज्यों में, 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों को छोड़कर एक त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था होगी। जिसके ऊपरी स्तर पर जिला पंचायत और निचले स्तर पर ग्राम पंचायत होगी तथा इन स्तरों के बीच एक मध्यवर्ती पंचायत स्तर होगी। 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में मध्यवर्ती पंचायत नहीं होगी। (अनु0 243 बी-1)

2- अधिसूचित ग्राम की एक ग्राम सभा होगी जिसमें वह सभी लोग शामिल होंगे जिनेक नाम उस ग्राम की मतदाता सूची में सम्मिलित हो। ग्राम सभा राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यों को सम्पन्न करेगी। (अनु0 243 ए)

3- राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरूप पंचायतों का गठन किया जायेगा। प्रत्येक पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया से किया जायेगा। पंचायत के सदस्यों की संख्या का निर्धारण जनसंख्या के अनुपात में किया जायेगा। (अनु0 243 सी-1)

4- राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा ग्राम पंचायतों के प्रमुखों का मध्यमवर्ती पंचायतों में तथा मध्यवर्ती पंचायतों के न होने पर जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा। इसी प्रकार मध्यमवर्ती पंचायतों के प्रमुखों का जिला स्तरीय पंचायतों मं प्रतिनिधित्व सुनिश्चत करेगा। (अनु0 243 सी-3)

5- ग्राम स्तरीय पंचायतों के प्रमुख (प्रधान) को राज्य के कानून के अनुसार चुना जायेगा। मध्यमर्वी व जिला पंचायतों के अध्यक्ष (प्रमुख) इन पंचायतों के सदस्यों द्वारा अपने में से चुने जायेंगे। (अनु 243 सी-5)

6- प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, के लिए सीटें आरक्षित होगी। यह सीटें

पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित की जायेगी, यह सीटे पंचायत में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षित की जायेगी। (अनु0 243 डी-1)

7- अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित स्थानों में से कम एक तिहाई (1/3) स्थान अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति से सम्बंधित महिलाओं के लिए आरक्षित होगीं। (अनु0 243 डी-3)

8- प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुल स्थानों में से न्यूनतम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किये जायेगें। (जिनमें अनु0 जाति अनु0 जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित स्थान भी सम्मिलित हैं।) (अनु0 243 डी-3)

9- प्रत्येक पंचायत की अवधि पांच वर्ष होगी। इसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व ही नए चुनाव कराये जायेंगे। यदि पंचायत को पांच वर्ष से पूर्व भंग कर दिया जाता हैतो 6 माह की अवधि समाप्त होने से पूर्व चुनाव कराये जायेंगे। (अनु 243 ई)

10- राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां प्रदान करेगें जो कि उन्हें स्वशासन की संस्था के रूप में कार्यरत बना सके तथा जिनसे पंचायते आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार कर सके एवं संविधान की 11 वीं अनुसूची में समाहित विषयों सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके। (अनु 243 जी)

11- पंचायते ऐसे कर, शुल्क, पथकर लगाने व संग्रहित करने का अधिकार रखेंगी जिन्हें लगाने का अधिकार राज्य विधानमण्डल उन्हें प्रदान करें। सम्बन्धित राज्य सरकारें राज्य की आकस्मिक निधि से पंचायतों को पर्याप्त सहायता व अनुदान देने की व्यावस्था करेगी। (अनु0 243, एच)

12- राज्यों के राज्यपाल इस अधिनियम के लागू होने से एक वर्ष के अंदर तथा इसके बाद प्रत्येक पांच वर्ष पश्चात पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और समुचित सिफारिशें करने के लिए वित्तीय आयोग का गठन करेंगे। राज्यपाल इन सिफारिशों को इस व्यवस्था के साथ लागू करने के लिए राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत करेंगे। (अनु 243, आई)

13- पंचायतों को राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित ढंग से अपने आय-व्यय का लेखा-जोखा रखना होगा जिसकी संपरीक्षा सरकार द्वार करवायी जा सकेगी। (अनु 243, जे)

14- पंचायतों के मतदाताओं की नामावलियाँ बनाने तथा पंचायत चुनाव संचालित करने लिए प्रत्येक राज्य में एक निर्वाचन आयोग स्थापित किया जायेगा। जिसकी अध्यक्षता एक राज्य निर्वाचन आयुक्त करेगा। (अनु0 243 के)

15- इस अधिनियम द्वारा पंचायतों का क्षेत्राधिकार बताने वाली 11 वीं अनुसूची संविधान में जोड़ी गयी है। जिसमें 29 विषय सम्मिलित किए गये है। (अनु 243, जी)

16- इस अधिनियम द्वारा संविधान की धारा 280 को भी इस रूप में संशोधित किया गया कि राज्यों के वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार पंचायतों हेतु राज्य की संचित निधि में व्यवस्था की जा सके ।

नवीन पंचायत राज्य व्यवस्था की उपलब्धियाँ :-

नवीन पंचायत राज्य व्यवस्था, जो कि 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम के जारी हो जाने के पश्चात् सम्पूर्ण देश में कार्य कर रही है, ने निसन्देह मृतप्राय: पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया है। संवैधानिक दर्जा दिये जाने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया है। इस अधिनियम की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है रही कि इससे पंचायतों के गठन में एकरूपता आयेगी इसके निर्वाचन नियमित हो सकेंगे। इस अधिनियम द्वारा पंचायतों को न केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुये हैं अपितु वित्तीय संसाधनों की गारण्टी भी प्राप्त हुई है जिससे ग्रामीण विकास में सहायता प्राप्त हुई। यह नवीन पंचायत राज व्यवस्था पूर्णत: लोकतांत्रिक विकेन्द्रकरण, चुनावों की वैधानिक अनिवार्यता, आनुपातिक प्रतिनिधित्व एवं उर्ध्वगामी नियोजन प्रक्रिया के साथ समायोजन की विशेषता रखती है। यद्यपि आलोचक यह कह सकते हैं कि इस व्यवस्था से ग्रामीण समाज का राजनीतिकरण होगा, गॉवों में गुटबन्धी को बढ़ावा मिलेगा और भ्रष्टाचार समाज की जड़ तक पहुंच जायेगा परन्तु इस सबके बावजूद इस नवीन व्यवस्था से प्राप्त लाभों को नकारा नहीं जा सकता। इस नवीन पंचायत व्यवस्था को निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है-

1- सर्वप्रथम नयी पंचायत राज व्यवस्था के माध्यम से सत्ता को विकेन्द्रीकृत करके विकास की कुंजी जनता के हाथ में सौंप दी गयी हैं। अब विकास योजनायें गांव पर ऊपर से नहीं थोपी जायेगीं और जनता को स्वयं अपनी आवश्यकताओं के आधार पर प्राथमिकतायें निर्धारित करके योजना बनाने का अधिकार होगा। साथ ही इन योजनाओं को लागू करके इनके कार्यान्वयन पर निगरानी करने का अधिकार भी जनता को प्राप्त हो सकेगा।

2- संविधान की 11 वीं अनुसूची में बतायें गये 29 विषय पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में आ जाने से जनसशक्तिकरण सम्भव हो सकेगा अब जनता को सशक्त बनाने वाले संसाधनों तक आम आदमी की सीधी पहुंच होगी और वह उसका सकारात्मक प्रयोग कर सकेगा। इससे विकास की गति को बढ़ावा मिल सकेगा।

3- विकास की व्यवस्थाओं को खुद निर्धारित करने और उन्हें पूरा करनें के संसाधन जुटाने का अधिकार मिल जाने से जनता के लिए स्थानीय संसाधनों को पहचानना और उनका प्रयोग

करना सम्भव होगा।

4- नियोजन एवं निर्णय-निर्माण कार्य सीधे-जनता के हाथ में आ जाने से जनता को प्रासंगिक प्रक्रियाओं का ज्ञान व इसके प्रयोग का अनुभव प्राप्त हो सकेगा। साथ ही उसे अपनी बात रखने की क्षमता, स्वयम को सौंपे गये उत्तरदायित्व को निभाने की सामर्थ्य तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों के आचरण पर निगरानी रखने का अधिकार भी विकसित हो सकेगा। वह नौकरशाहों से नियंत्रित होने के स्थान पर उन्हें नियंत्रित कर सकेगा। जिससे नौकरशाही में जनता के प्रति उपेक्षा के सस्थान पर उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

5- आरक्षण की व्यवस्था के कारण महिलाओं सहित समाज के सभी कमजोर वर्गो को समान प्रजातांत्रिक अधिकार मिलेंगे व शोषण की सम्भावनायें घटेंगी और सामाजिक समानता बढ़ेंगी।

6- पंचायतों में निर्वाचित होने की आयु 21 वर्ष कर दिए जाने से पंचायतों कोअपने कामकाज में युवाओं की क्षमताओं से लाभान्वित होने का अधिक अवसर मिलेगा। इसके अतिरिक्त युवाओं को विधानसभा अथवा लोकसभा सदस्य चुने जाने की न्यूनतम आयु प्राप्त करने से पूर्व ही प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं का पर्याप्त प्रशिक्षण व अनुभव प्राप्त हो सकेगा।

7- पंचायतों को स्वयम कर, शुल्क व पथकर लगाने का अधिकार मिल जाने से स्थानीय निकाय अधिक स्वावलम्बी और आर्थिक रूप से सक्षम हो सकेगें।

8- पंचायतों के खातों की जांच की व्यवस्था से पंचायतों के वित्तीय आचरण में पारदर्शिता आ सकेगी और उनमं वित्तीय अनुशासन एवं उत्तरदायित्व उत्पन्न होगा।

9- नवीन व्यवस्था से पंचायतों का कार्यकाल निश्चित हो गया है। राज्य सरकारों के लिए नियत समय पर पंचायत चुनाव कराना आवश्यक बन गया है। अब राज्य सरकारों के लिए पंचायतें भंग करके उनकी शक्तियां अपने हाथ में लेना अथवा लम्बे समय के लिए अपने नामित व्यक्तियों व अध्किारियों को सौंपना सम्भव नहीं रह गया है।

चुनौतियाँ एवं सुझावः-

73 वें संविधान के जारी हो जाने के उपरान्त आज लगभग पूरे देश में संविधान द्वारा प्राधिकृत नई पंचायत राज व्यवस्था लागू हो चुकी है तथा शासन के विकेन्द्रीकरण द्वारा सत्ता जनता को सौंप दी गयी है। परन्तु खेद का विषय है कि पंचायतों का गठन सम्पन्न हो जाने के इतने वर्षो बाद भी अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आ पाये हैं। आज भी ऐसी अनेक चुनौतियाँ है जिनका सामना पंचायत संस्थाओं को करना पड़ रहा है। जिसके समाधान के अभाव में यह संस्थाएं अपनी सार्थक भूमिका नहीं निभा पा रही हैं। अतः यह आवश्यक है कि इस दिशा में कुछ सार्थक कदम उठायें जायें ताकि इस व्यवस्था से सार्थक परिणाम

प्राप्त हो सकें और वास्तविक रूप में स्थानीय स्तर पर जन शासन स्थापित हो सके।

इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दु विचारणीय हैं :-

1- पंचायत राज अधिनियम की व्यवस्था के अनुरुप विभिन्न स्तरों के पंचायत पदाधिकारियों का निर्वाचन तो हो गया है। परन्तु उन्हें उनके अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों की समुचित जानकारी नहीं है। अत:इन पदाधिकारियों को इस सन्दर्भ में समुचित व्यापक जानकारी देने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इस दिशा में सरकारी सूचना माध्यम महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर सकता है।

2- संविधान की 11 वीं अनुसूची में वर्णित् 29 विषयों के सन्दर्भ में ग्राम, क्षेत्र एवं जिला पंचायतों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से सीमांकित नहीं किया गया है। अत: पंचायों के प्राधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से सीमांकित कर इनकी जानकारी उपलब्ध करायी जाये।

3- जन सामान्य में पंचायत राज व्यवस्था के प्रति चेतना एवं जागृति का अभाव है। जिससे ग्रामीण विकास में जन सामान्य की सहभागिता एवं सहयोगी भूमिका प्राप्त नहीं पो रही है। अत: इसके लिये संचार माध्यमों के व्यापक प्रयोग द्वारा एक जनजागृति अभियान चलाया जाना चाहिए ताकि विकास का लाभ गांव के अंतिम व्यक्ति तक पहुंच सके।

4- आरक्षण के कारण सैद्धान्तिक रूप से सत्ता महिलाओं और कमजोर वर्गों के हाथ में तो आ गयी है। परन्तु वास्तुविकता में आज भी पारम्परिक धनी उच्च वर्ग के पुरुष ही सत्ता पर नियंत्रण बनाये हुये हैं। जहाँ महिलायें प्रधान एवं प्रमुख आदि निर्वाचित हुई है वह भी पुराने कुलीन एवं सत्ताधारी परिवारों से ही सम्बंधित है। अज्ञानता, अनुभवहीनता तथा पुरुषों पर निर्भरता महिलाओं के आरक्षण को अर्थहीन बना देती है। इसी प्रकार कमजोर वर्गों के भी वही लोग प्राय: प्रधान व प्रमुख बन पाये है। जिन्हें सवर्णों का समर्थन प्राप्त है। परिणामस्वरूप आरक्षण का लाभ जनता को नहीं मिल पाया। अत: आवश्यक है कि महिलाओं एवं पिछड़े वर्गों में जागरूकता लायी जाय और जहां तक सम्भव हो उन्हें शिक्षित एवं प्रशिक्षित करके उन्हें अपनी नयी भूमिका को भली भांति निभाने योग्य बनाया जाय।

5- पंचायत को स्वयम अपनी विकास योजनाएं तैयार करने तथा उनका स्वयं कार्यान्वयन करने का अधिकार दिया गया है परन्तु पंचायतों के पास इसके लिए समुचित ज्ञान, कौशल व तकनीकी क्षमता का अभाव है। अत: शासन प्रशासन द्वारा इस सन्दर्भ में समस्त आवश्यक विशेषज्ञता पूर्ण सहायता सुलभ कराई जानी चाहिए, जिससे पंचायतें सार्थक विकास योजनाएं बनाने व कार्यान्वित करने में सक्षम हो सकें।

6- पंचायतों के पास अपनी विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने हेतु पर्याप्त आर्थिक संसाधनों का अभाव है। अत: इस सन्दर्भ में उन्हें सक्षम बनाने के लिए पंचायती सम्पत्ति का न्यायोचित आय उत्पादक प्रयोग करने का अधिकार दिया जाना चाहिए तथा समुचित प्रशासनिक वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाय।

7- अन्य व्यवस्थाओं के समान पंचायत राज व्यवस्था में भी नौकरशाही का बोल-बाला अत्यधिक पाया जाता हैं। पंचायत पदाधिकरियों का कार्यक्रम, योजनाओं तथा धन इत्यादि के लिए सरकारी कर्मचारियों तथा अन्य अधिकारियों पर आश्रित रहना पड़ता है। सरकारी औपचारिकतायें पूर्ण करने में ही अत्यधिक समय लग जाता है। इससे धन, श्रम एवं मानसिक क्षमता का व्यापक अपव्यय होता है जिसका नकारात्मक प्रभावविकास की प्रक्रिया पर पड़ता है। इसके अतिरिक्तम पंचायत राज संस्थाओं के प्रति शासकीय कर्मचारियों एवं अधिकारियों का व्यवहार उपेक्षापूर्ण व असहयोगपूर्ण रहता है। अत: यह आवश्यक है कि ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को सरल व सुलभ बनाया जाय। साथ ही प्रशासनिक सुधार के द्वारा ग्रामीण विकास से जुड़े अधिकारियों एवं कर्मचारियों की प्रोन्नति तथा पुरूस्कार का मापदण्ड उनके द्वारा ग्रामीण विकास में निर्वाह की गयी भागीदारी को बनाया जाना चाहिए।

8- संसद और विधानसभा के समान पंचायत राज संस्थाओं में भी भ्रष्ट एवं अपराधी तत्वों का प्रवेश हो चुका है, जिसके कारण यह संस्थाएं अपनी गरिमा खो रही है। भ्रष्ट प्रतिनिधियों तथा भ्रष्ट प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों की मिलीभगत से विकास की योजनायें मात्र कागजों में ही कार्यान्वित को रही हैं तथा जिन पर व्यवहार में अमल होता भी है तो वे भ्रष्टाचार का शिकार बन कर रह जाती हैं। भ्रष्टाचार के कारण सामान्य जन के लिए निर्मित कार्यक्रमों का लाभ एक सीमित वर्ग विशेष को ही प्राप्त हो पाता है। अत: इस स्थिति से निबटने के लिए यह आवश्यक है कि पंचायत पदाधिकारियों की योग्यता का मापदण्ड पुन: निर्धारित किया जाए। सख्त कानून बनाकर भ्रष्ट एवं अपराधी तत्वों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाया जाए तथा जनता को अपने भ्रष्ट एवं अयोग्य प्रतिनिधियों को वापिस बुलाने (Recall system) का अधिकार प्रदान किये जाने के सन्दर्भ में गम्भीरता से विचार किया जाय।

इस प्रकार 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देकर पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है। परिणामस्वरूप आज पंचायत संस्थाओं की शक्तियां, उत्तरदायित्व एवं कार्यक्षेत्र अतीत की अपेक्षा कहीं अधिक रूप से परिभाषित हैं। नवीन पंचायत राज व्यवस्था ने न केवल अधारभूत स्तर पर प्रत्यक्ष प्रजातंत्र स्थापित करने की दिशा में कदम उठाया है वरन सतत् विकास सम्भव बनाने हेतु स्थानीय नियोजन प्रक्रिया को भी प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार 73 वें संविधान संशोधन ने जन-सशक्तिकरण के माध्यम से सामुदायिक विकास को अर्थपूर्ण एवं प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक

आधरभूत संरचना स्थापित करने का मार्ग प्रसस्त किया है। परन्तु इतना सब करने के बावजूद इन संवैधानिक प्रावधानों का कोई अर्थ नहीं होगा यदि इन्हें पोषित करने के लिए कतिपय ठोस व्यवहारिक कदम न उठायें जायें। मात्र कानून बना देने से ही सत्ता जनता के हाथों में नहीं पहुंच सकती। अतः आवश्यकता इस बात की है कि व्यवस्था की सभी कमजोरियों को पहचाना जाए तथा एक सुदृढ़ संरचना पुंज तैयार करके विश्लेषण द्वारा ऐसे सुधारों के सुझाव खोजे जाये जिन्हें अपना कर पंचायत राज व्यवस्था को उसके वास्तिविक लक्ष्य तक पहुंचाया जा सके। यदि ऐसा सम्भव हुआ तो निःसन्देह भारत में गांधी जी के 'ग्राम-स्वराज्य' की कल्पना साकार हो सकती है।

सन्दर्भ :-

1- घोष, रत्ना एवं आलोक कुमार, पंचायत सिस्टम इन इंडिया, कनिष्का पब्लिशिंग क0,नई दिल्ली, 1999, पृ. - 32

2- कोठारी, रजनी, पंचायती राजः, दी असेसमेण्ट, इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, मई, 13, 1961, पृ. 757

3- मजमूदार, बी0बी0 प्राब्लम्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पटना, 1995, पृ. 205

4- मजमूदार, बी0बी0, राय चौधरी एण्ड दत्त, ए एडवॉस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया, मैकमिलन, लंदन, 1948, प. 29

5- सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह, पंचायत राज एवं अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व, नई दिल्ली, 2000 पृ.-49

6- विद्यालंकार, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1928, पृष्ठ- 210

7- सेसिल क्रोस, द डेवलपमेंट ऑफ सेल्फ गर्वनमेंट इन इंडिया, (1858-1914) शिकागों यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो, 1922 पृ. 21

8- घोष, रत्ना, पंचायत सिस्टम इन इंडियाः हिस्टोरिकल् एण्ड कन्स्टीटयूशनल पर्सपेक्टिव, पूर्वोक्त पृ.-209

9- पाण्डे, राम (सः) पंचायती राज, जयपुर पब्लिशिग हाउस, जयपुर, 1989, पृ. 5

10- पाण्डे राम (सः) पंचायती राज, जयपुर पब्लिथिग हाउस, जयपुर,1989, पृ. 6

11- सिवन्जा, एन0 पंचायत राज रिफार्मस एण्ड रूरल डेवलपमेंट, चुघ पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 1990, प. 42

12- दिलीप कुमार, एक अभिनव प्रयोग है पंचायती राज व्यवस्था, कुरुक्षेत्र, अगस्त, 1989, पृ. 23

13- कोठारी, रजनी, पालिटिक्स इन इंडिया, ओरियण्ट लॉगमेन, नई दिल्ली, 1970, पृ. 95

14- बिष्ठ, रामसिंह, ग्रामीण विकास योजनाओं के प्रति पंचायत सदस्यों का दृष्टिकोण, कुरूक्षेत्र, अंक-6, अप्रैल 2001, पृ. 9

15- कमल एस0 आर0, ग्रामीण विकास में पंचायती राज की भूमिका, कुरूक्षेत्र, अंक 10, अगस्त 1989, पृ. 43

16- नन्दलाल, पंचायती राज संस्थाओं की पुनर्वस्थापना, कुरुक्षेत्र, तदैव, पृ. 12

17- रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी आन एडमिनिष्ट्रेटिव एडजस्टमेंट फार रूरल डेवलपमेंट एण्ड पावर्टी एलिविएशन, चेयरमैन, जी0वी0के0 राव, ग्रामीण विकास विभाग नई दिल्ली, 1985, पृ. 2 तथा 3
18- सिंह, एस0एस0 एवं मिश्रा, सुरेश, लेजिस्लेटिव फ्रेमवर्क आफ पंचायत राज इन इंडिया, इंटेलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1993 पृ. 10
19- नन्दलाल, पूर्वोक्त, पृ. 13
20- भुवनेश्वरी महिला आरश्रम, अंजनीसैण द्वारा आयोजित कार्यशाला-गढ़वाल में पंचायती राज 2 से 6 अप्रैल की प्रकाशित रिपोर्ट, 1997, पृ. 8 से 14